अर्धमागधी आगम साहित्य एवं आचारांगसूत्र

(DR. Prem Suman Jain)

जैन परम्परा के अनुसार तीर्थकर महावीर की दिव्यदेशना जनभाषा अर्धमागधी प्राकृत में हुई, जो सुगम और सुबोध थी, जिसे प्रत्येक श्रोता सुगमता से समझ सकता था। दिव्यध्वनि सर्वांगीण होती है, उसमें सब जीवों की जिज्ञासाओं के समाधान का सामर्थ्य होता है। भगवान् के प्रमुख गणधर इन्द्रभूति गौतम ने उसे सांगोपांग ग्रहण किया और जीवों को उसके सार का रसास्वाद कराया। आज जो जैन साहित्य उपलब्ध है वह सब भगवान् महावीर की उपदेश परम्परा से सम्बद्ध है। भगवान महावीर के प्रधान गणधर गौतम इन्द्रभूति थे। उन्होंने भगवान महावीर के उपदेशों को अवधारण करके बारह अंग और चौदह पूर्व के रूप में निबद्ध किया।

चार अनुयोग

जिनेन्द्र भगवान् के वचनों को विषय की दृष्टि से चार अनुयोगों में निबद्ध किया गया है—1.प्रथमानुयोग, 2.करणानुयोग, 3. द्रव्यानुयोग और 4.चरणानुयोग । समस्त द्वादशांग वाणी का सार इन चार अनुयोगों में ही निहित है।

प्रथमानुयोग— "

प्रथम उपदेश को प्रथमानुयोग कहा जाता है अथवा कथानुयोग भी कहा जाता है। प्रथम शब्द का अर्थ प्रथम श्रेणी न समझकर प्रथम कक्षा समझना चाहिये। जिस प्रकार प्रथम कक्षा में पढ़नेवाला शिशु अबोध होता है, उसको कथा—कहानियों, चित्रों के द्वारा अक्षर—बोध कराया जाता है, उसी प्रकार जिसको आगम का ज्ञान नहीं होता उसको आगम और अध्यात्म का ज्ञान कथानुयोग के द्वारा कराया जाता है। इस प्रकार उपदेशाधिकार में कथा—कहानियों के माध्यम से आगम का, अध्यात्म का तथा जैन सिद्धान्त का परिज्ञान कराया जाय वह प्रथमानुयोग है इसका लक्षण स्वामी समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में बताया है—ऐसा समीचीन बोध (ज्ञान) देनेवाला प्रथमानुयोग है जिसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का आख्यान है। त्रेसठ शलाकापुरुषों के चरित्र का, पुण्य योग्य समस्त सामग्री का कथन है, बोधि अर्थात् रत्नत्रय और समाधि अर्थात् चार आराधनाओं का जिसमें विवेचन है वह प्रथमानुयोग है। "

प्रथमानुयोग में वर्णित अनेक कलाओं, विद्याओं, युद्धों, अस्त्र—शस्त्रों, युद्ध की विभीषिकाओं आदि का ज्ञान होता है। मानव का मानवोचित आहार—विहार, आमोद—प्रमोद

तथा रहन–सहन का परिज्ञान प्रथमानुयोग के अध्ययन से प्राप्त होता है। व्यक्ति सांसारिक तथा पारमार्थिक सुख चाहता है तो उसे प्रथमानुयोगिक ग्रंथ– जैसे–पुराण, चरित्र, नाटक, चम्पू, कथा–कोष आदि का अध्ययन करना चाहिये इससे उसे ऐहिक तथा पारमार्थिक दोनों प्रकार के सुख मिल सकेंगे।

2–करणानुयोग

इस अनुयोग में जीव के परिणामों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। इसका दूसरा नाम गणितानुयोग भी है अर्थात् जिस अनुयोग में गणित के प्रयोगों द्वारा विषय–वस्तु को समझाया गया हो वह करणानुयोग है। लोक और अलोक के विभाजन का उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के छः छः विभागों के परिवर्तनों का और चातुर्गति का दर्पण के समान यथावत् ज्ञान करानेवाला करणानुयोग है।

3–द्रव्यानुयोग

द्रव्यानुयोग जीवन और अजीव–रूप उत्तम तत्वों को, पुण्य, पाप, बंध, मोक्ष तथा द्रव्यश्रुत और भावश्रुत को प्रकाशित करता है। द्रव्यानुयोग की कसौटी पर कसकर ही वस्तु–तत्व को समझा जाता है, जिससे मोक्ष–मार्ग में कहीं पर भी अटक न हो और मार्ग प्रशस्त होता चला जाय।

4–चरणानुयोग

चरणानुयोग का वह भाग है जिसमें गृहस्थ–धर्म तथा मुनिधर्म का पूर्णतया विवेचन किया गया हो। आचार्य समन्तभद्र ने चरणानुयोग का लक्षण बताया है–जिस अनुयोग (शास्त्र विशेष) में घर में रहनेवाले गृहस्थों और गृह–त्यागियों, मुनियों के चरित्र की उत्पत्ति, उसकी वृद्धि तथा रक्षा का विवेचन हो उसको चरणानुयोग कहते हैं। आचरण करने को चारित्र कहते हैं। यह आचरण मिथ्या और सम्यक् दोनों ही प्रकार का होता है। जब तक जीवन को वस्तु–तत्व की सच्ची श्रद्धा नहीं होती तब तक उसका आचरण सम्यक् नहीं होता किन्तु जब उसको वस्तुतत्व की सच्ची प्रतीत व सच्चा ज्ञान होता है तब उसका आचरण सम्यक् होता है। "

जैनों के लिए आगम जिनवाणी है, आप्तवचन है, उनके धर्म–दर्शन और साधना का आधार है। यद्यपि वर्तमान में जैन धर्म का दिगम्बर सम्प्रदाय उपलब्ध अर्धमागधी आगमों को प्रमाणभूत नहीं मानता है, क्योंकि उसकी दृष्टि में इन आगमों में कुछ ऐसा प्रक्षिप्त अंश है, जो उनकी मान्यताओं के विपरीत है। हमारी दृष्टि में चाहे वर्तमान में उपलब्ध अर्धमागधी आगमों में कुछ प्रक्षिप्त अंश हो या उनमें कुछ परिवर्तन परिवर्धन भी हुआ हो, फिर भी वे

जैनधर्म के प्रामाणिक दस्तावेज हैं। उनमें अनेक ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध हैं। उनकी पूर्णतः अस्वीकृति का अर्थ अपनी प्रामाणिकता को ही नकारना है। श्वेताम्बर मान्य इन अर्धमागधी आगमों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये ई.पू. पॉचवीं शती से लेकर ईसा की पॉचवीं शती अर्थात् लगभग एक हजार वर्ष में जैन संघ के चढ़ाव–उतार की एक प्रामाणिक कहानी कह देते हैं।

अर्धमागधी आगमों का वर्गीकरण–

वर्तमान में जो आगम ग्रन्थ उपलबध हैं उन्हें निम्न रूप से वर्गीकृत किया जाता है–

ग्यारह अंग ग्रन्थ–1. आयार (आचारांग) 2. सूयगड (सूत्रकृतांग), 3.ठाण(स्थानांग), 4.समवाय (समवायांग), 5. वियाहपन्नत्ति (व्याख्याप्रज्ञप्ति या भगवती), 6. नायाधम्मकहाओ (ज्ञाता–धर्मकथा), 7. उवासगदसाओ(उपासकदशा), 8.अंतगडदसाओ(अन्तकृदृशा), 9. अनुत्तरोववादयदसाओ(अनुत्तरौपपातिकदशा), 10.पण्हवागरणाइं (प्रश्नव्याकरणानि), 11. विवागसुयं (विपाकश्रुतम्) 12.दृष्टिवाद जो विन्च्छिन्न हुआ है।

बारह उपांग ग्रन्थ–उववादइय (औपपातिक) , 2. रायपसेणइय (रायप्रसेनजित), अथवा रायपसेणियं (राजप्रश्नीय), 3. जीवाजीवाभिगम, 4.पण्णवणा (प्रज्ञापना), 5. सूरपण्णत्ति(सूर्यपज्ञप्ति), 6. जम्बूद्दीपपण्णत्ति (जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति), 7.चंदपण्णत्ति, (चन्द्रप्रज्ञप्ति), 8–12. निरयावलिया सुयक्खंध (निरयावलिकाश्रुतस्कन्ध), 8. निरयावलियाओ (निरयावलिकाः), 9. कप्पवडिसियाओ (कल्पावर्सिका), 10 पुप्फियाओं (पुष्पिका), 11. पुप्फचूलाओ (पुष्पचूला) , 12. वण्हिद्साओं (वृष्णिदशा)।

जहॉ तक उपुर्यक्त अंग और उपांग ग्रन्थों का प्रश्न है, श्वेताम्बर परम्परा के सभी सम्प्रदाय इन्हें मान्य करते हैं जबकि दिगम्बर सम्प्रदाय इन्हीं ग्यारह अंगसूत्रों के नाम को स्वीकार करते हुए भी यह मानता है कि वे अंगसूत्र वर्तमान में विलुप्त हो गये हैं। उपांगसूत्रों के सन्दर्भ में श्वेताम्बर परम्परा के सभी सम्प्रदायों में एकरूपता है किन्तु दिगम्बर परम्परा में बारह उपांगों की न तो कोई मान्यता रही और न वे वर्तमान में इन ग्रन्थों के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। यद्यपि जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति आदि नामों से उनके यहॉ कुछ ग्रन्थ अवश्य पाये जाते हैं। साथ ही सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति को भी उनके द्वारा दृष्टिवाद के परिकर्म के अन्तर्गत स्वीकार किया गया हैं

चार मूलसूत्र ग्रन्थ

सामान्यतया उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, आवश्यक और पिण्डानिर्युक्ति ये चार मूलसूत्र माने गये हैं फिर भी मूलसूत्रों की संख्या और नामों के सन्दर्भ में श्वेताम्बर

सम्प्रदायों में एकरूपता नहीं है। जहॉ तक उत्तराध्ययन और दशवैकालिक का प्रश्न है इन्हें सभी श्वेताम्बर सम्प्रदायों एवं आचार्यों ने एक मत से मूलसूत्र माना है। किन्तु स्थानकवासी एवं तेरापन्थी सम्प्रदाय आवश्यक को मूलसूत्र के अन्तर्गत नहीं मानते हैं। ये दोनों सम्प्रदाय आवश्यक एवं पिण्डनिर्युक्ति के स्थान पर नन्दी और अनुयोगद्वार को मूलसूत्र मानते हैं। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा में कुछ आचार्यों ने पिण्डनिर्युक्ति के साथ–साथ ओघनिर्युक्ति को भी मूलसूत्र माना है।

छेह छेदसूत्र ग्रन्थ–

छेदसूत्रों के अन्तर्गत वर्तमान में 1. आयारदशा (दशाश्रुतस्कन्ध) 2. कप्प (कल्प), 3. ववहार (व्यवहार), 4. निसीह (निशीथ), 5. महानिसीह (महानिशीथ) और 6. जीयकप्प (जीतकल्प) । ये छह ग्रन्थ माने जाते हैं। इनमें से महानिशीथ और जीपकल्प को श्वेताम्बरों की तेरापन्थी और स्थानकवासी सम्प्रदायें मान्य नहीं करती हैं। वे दोनों मात्र चार ही छेदसूत्र मानते हैं जबकि श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय उपर्युक्त 6 छेदसूत्रों को मानता है।

दस प्रकीर्णक ग्रन्थ–

प्रकीर्णक के अन्तर्गत निम्न दस ग्रन्थ माने जाते हैंः–

1.चउसरण(चुतःशरण) 2. आउरपच्चक्खाण (आतुरनप्रत्याख्यान), 3. भत्तपरिन्ना (भक्तपरिज्ञा) 4. संथारग (संस्तारक), 5. तंडुलवेयालिय (तंदुलवैचारिक), 6.चंदावेज्झय (चन्द्रवेध्यक), 7. देविन्दत्थय (देवेन्द्रस्तव), 8. गणिविज्जा (गणिविद्या) , 9. महापच्चक्खाण (महाप्रत्याख्यान) और 10. वीरत्थय (वीरस्तव)।

श्वेताम्बर सम्प्रदायों में स्थानकवासी और तेरापंथी इन प्रकीर्णकों को मान्य नहीं करते हैं। मुनि श्री पुण्यविजय जी ने पइण्णयसुत्ताइं, प्रथम भाग की भूमिका में प्रकीर्णक नाम से अभिहित लगभग निम्न 22 ग्रन्थों का उल्लेख किया है इनमें से अधिकांश महावीर विद्यालय, बम्बई से पइण्णयसुत्ताइं नाम से 2 भागों में प्रकाशित हैं। जहॉ तक दिगम्बर एवं यापनीय परम्परा का प्रश्न है, वह स्पष्टतः इन प्रकीर्णकों को मान्य नहीं करती हैं, फिर भी मूलाचार में आतुरप्रत्याख्यान और महाप्रत्याख्यान से अनेक गाथायें उसके संक्षिप्त प्रत्याख्यान और बृहत् प्रत्याख्यान नामक ग्रन्थ में उपलब्ध होती हैं। इसी प्रकार भगवती आराधना में भी मरणविभक्ति, आराधनापताका आदि अनेक प्रकीर्णकों की गाथायें उपलब्ध हैं।

दो चूलिकासूत्र ग्रन्थ–

चूलिकासूत्र के अन्तर्गत नन्दीसूत्र और अनुयोगद्वार ये ग्रन्थ माने जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि 11 अंग, 12 उपांग, 4 मूल, 6 छेद, 10 प्रकीर्णक, 2 चूलिकासूत्र, ये

45 आगम श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा में मान्य हैं। स्थानवासी व तेरापन्थी इसमें से 10 प्रकीर्णक, जीतकल्प, महानिशीथ और पिण्डनिर्युक्ति इन 13 ग्रन्थों को कम करके 32 आगम मान्य करते हैं। इस प्रकार वर्तमानकाल में अर्धमागधी आगम साहित्य को अंग, उपांग, प्रकीर्णक, छेद, मूल और चूलिकासूत्र के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, किन्तु यह वर्गीकरण पर्याप्त परवर्ती है। 12वीं शती से पूर्व में ग्रन्थों में इस प्रकार के वर्गीकरण का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

आगमों के वर्गीकरण की प्राचीन शैली–

अर्धमागधी आगम साहित्य के वर्गीकरण की प्राचीन शैली इससे भिन्न रही है। इस प्राचीन शैली का सर्वप्रथम निर्देश हमें नन्दीसूत्र एवं पाक्षिकसूत्र (ईस्वी सन् पॉचवीं शती) में मिलता है। उस युग में आगमों को अंगप्रविष्ट व अंगबाह्य, इन दो भागों में विभक्त किया जाता था। अंगप्रविष्ट के अन्तर्गत आचारांग आदि 12 अंग ग्रन्थ आते थे। शेष ग्रन्थ अंगबाह्य कहे जाते थे। उसमें अंगबाह्यों की एक संज्ञा प्रकीर्णक भी थी। दिगम्बर परम्परा में आचार्य शुभचन्द्र कृत अंगप्रज्ञप्ति (अंगपण्णत्ति) नामक एक ग्रन्थ मिलता है। यह ग्रन्थ धवलाटीका के पश्चात् का प्रतीत होता है। इसमें धवलाटीका में वर्णित 12 अंगप्रविष्ट व 14 अंगबाह्य ग्रन्थों की विषयवस्तु का विवरण दिया गया है। यद्यपि इसमें अंगबाह्य ग्रन्थों की विषयवस्तु का विवरण संक्षिप्त ही है। इस ग्रन्थ में और दिगम्बर परम्परा के अन्य ग्रन्थों में अंग बाह्यों को प्रकीर्णक भी कहा गया है।

प्राकृत भाशा में निबद्ध जो साहित्य उपलब्ध है, उसमें अर्धमागधी आगम साहित्य प्राचीनतम है। यहॉ तक की आचारांग का प्रथम श्रुतस्कन्ध और ऋषिभाषित तो अशोककालीन प्राकृत अभिलेख से भी प्राचीन है। ये दोनों ग्रन्थ लगभग ई.पू. पॉचवीं–चौथी शताब्दी की रचनाऍ हैं। आचारांग की सूत्रात्मक औपनिषदिक शैली उसे उपनिषदों का निकटवर्ती और स्वयं भगवान महावीर की वाणी सिद्ध करती है। भाव, भाषा और शैली तीनों के आधार पर यह सम्पूर्ण पालि और प्राकृत साहित्य में प्राचीनतम है। आत्मा के स्वरूप एवं अस्तित्व सम्बन्धी इसके विवरण औपनिषदिक विवरणों के अनुरूप हैं। इसमें प्रतिपादित महावीर का जीवनवृत्त भी अलौकिकता और अतिशयता रहित है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह विवरण भी उसी व्यक्ति द्वारा कहा गया है, जिसने स्वयं उनकी जीवनचर्या को निकटता से देखा और जाना होगा। अर्धमागधी आगम साहित्य में भी सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के छठे अध्याय, आचारांगचूला और कल्पसूत्र में भी महावीर की जीवनचर्या

का उल्लेख है, किन्तु वे भी आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध की अपेक्षा परवर्ती है, क्योंकि उनमें अलौकिकता, अतिशयता और अतिरंजना का प्रवेश होता गया है।

सम्पूर्ण अर्धमागधी आगम साहित्य न तो एक व्यक्ति की रचना है और न एक काल की। यह सत्य है कि इस साहित्य को अन्तिम रूप वीरनिर्वाण संवत् 980 में वल्लभी में सम्पन्न हुई वाचना में प्राप्त हुआ। किन्तु इस आधार पर कुछ विद्वान यह गलत निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि सभी अर्धमागधी आगम साहित्य ईसवी सन् की पॉचवीं शताब्दी की रचना है। आगमों में विषयवस्तु, भाषा और शैली की जो विविधता और भिन्नता परिलक्षित होती है, वह स्पष्टतया इस तथ्य की प्रमाण है कि संकलन और सम्पादन के समय उनकी मौलिकता को यथावत रखने का प्रयत्न किया गया है। आगमों की विषयवस्तु के कुछ प्रक्षिप्त अंश हैं, किन्तु प्रथम तो ऐसे प्रक्षेप बहुत ही कम हैं और दूसरे उन्हें स्पष्ट रूप से पहचाना भी जा सकता है। अतः इस आधार पर सम्पूर्ण अर्धमागधी आगम साहित्य को परवर्ती मान लेना सबसे बड़ी भ्रान्ति होगी।

अर्धमागधी आगमों में, महाराष्ट्री प्राकृत के प्रभाव को देखकर उनकी प्राचीनता पर संदेह नहीं करना चाहिये, अपितु उन ग्रन्थों को विभिन्न प्रतियों एवं निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीकाओं के आधार पर पाठों के प्राचीन स्वरूपों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करना चाहिये। वस्तुतः अर्धमागधी आगम साहित्य में विभिन्न काल की सामग्री सुरक्षित है। इसकी उत्तर सीमा ई. पूर्व पॉचवीं–चौथी शताब्दी और निम्न सीमा ई. सन् की पॉचवीं शताब्दी है। वस्तुतः अर्धमागधी साहित्य के विभिन्न ग्रन्थों का या उनके किसी अंश विशेष का काल निर्धारित करते समय उनमें उपलब्ध सांस्कृतिक सामग्री, दार्शनिक चिन्तन की स्पष्टता एवं गहनता तथा भाषा–शैली आदि सभी पक्षों पर प्रामाणिकता के साथ विचार करना चाहिए। इस दृष्टि से अध्ययन करने पर ही यह स्पष्ट हो सकेगा कि अर्धमागधी आगम साहित्य का कौन–सा ग्रन्थ अथवा उसका कौन–सा अंश विशेष किस काल की रचना है।

बारहवें अंगसूत्र को दृष्टिवाद के नाम से जाना जाता है। शब्दिक अर्थ की दृष्टि से यह स्पष्ट हैं कि इस ग्रन्थ में भगवान महावीर के पूर्ववर्ती एवं समकालीन विभिन्न दार्शनिक मत–मतान्तरों (दृष्टियों) एवं विचारों को संकलित किया गया होगा। दृष्टिवाद के मूलतः पॉच अधिकार माने गये हैं–1. परिकर्म, 2. सूत्र. 3. प्रथमानुयोग (कथाएँ), 4. पूर्वगत और 5. चूलिका। यह भी स्वाभाविक है की इसके पूर्वगत भाग के अन्तर्गत भगवान महावीर के पूर्ववर्ती 23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्व के दार्शनिक विचारों का संकलन रहा होगा।

आज जैन धर्म की श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों ही शाखाएँ इस आगम ग्रन्थ के लुप्त होने की बात स्वीकार करती है फिर भी उनकी यह मान्यता है कि इसके पूर्वगत विभाग के आधार पर परवर्ती काल में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है किन्तु इतना निश्चित है कि यह अंग आगम अपने मूल स्वरूप में स्थिर नहीं रह सका। चाहे दृष्टिवाद आज अपने मूल स्वरूप में अनुपलब्ध हो किन्तु उसके कुछ अंश श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों परम्पराओं के मान्य ग्रन्थों में सुरक्षित हैं। श्वेताम्बर परम्परा में उत्तराध्ययन सूत्र के कुछ अध्ययन, दशासूत्रस्कन्ध, वृहत्कल्प, व्यवहार, निशीथ आदि आगम ग्रन्थ तथा जीवसमास, कर्मप्रकृति, पंचसंग्रह आदि कर्म साहित्य के ग्रन्थ पूर्वों के आधार पर ही निर्मित हुए हैं। दिगम्बर परम्परा में भी कषायपाहुड , षटखण्डागम आदि को पूर्वों से उद्धृत माना जाता है।

अंग आगमों का बहुत–सा भाग कालक्रम में विलुप्त हुआ है साथ ही वल्लभी वाचना के पूर्व संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन एवं विलोप भी हुआ है। इन ग्रनथों के पुस्तकारूढ़ होने से पूर्व जो श्रुत परम्परा चलती रही, वह भी इन ग्रन्थों के पाठभेद आदि का कारण रही है। आगमों के रूप में जो साहित्य निधि हमें आज उपलब्ध है वह भी भारतीय संस्कृति विशेष रूप से जैन धर्म, दर्शन और संस्कृति के प्राचीन स्वरूप को स्पष्ट करने में बहुत महत्वपूर्ण है।

अर्धमागधी जैनागम के प्रमुख ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

आचारांग (आयारंग)

इस ग्रन्थ में अपने नामानुसार मुनि–आचार का वर्णन किया गया है। इसके दो श्रुतस्कंध हैं। भाषा, शैली तथा विषय की दृष्टि से स्पष्टतः प्रथम श्रुतस्कंध अधिक प्राचीन है। इसकी अधिकांश रचना गद्यात्मक है, बीच–बीच में कहीं–कहीं पद्य आ जाते हैं। अर्द्धमागधी प्राकृत भाषा का स्वरूप समझने के लिए यह रचना बड़ी महत्वपूर्ण है। इसके उपधान नामक नवमें अध्ययन में महावीर की तपस्या का बड़ा मार्मिक वर्णन पाया जाता है। यहॉ के उनके लाढ, वज्रभूमि और शुभ्रभूमि में विहार और नाना प्रकार के घोर उपसर्ग सहन करने का उल्लेख आया है। द्वितीय श्रुतस्कंध में श्रमण के लिए भिक्षा मांगने, आहार–पान शुद्धि, शय्या–संस्तरण ग्रहण, विहार चातुर्मास, भाषा, वस्त्र, पात्रादि उपकरण, मल–मूत्र–त्याग एवं व्रतों व तत्सम्बन्धी भावनाओं के स्वरूपों व नियमोपनियमों का वर्णन हुआ है।

सूत्रकृतांग (सूयगडं)–

यह ग्रन्थ भी दो श्रुतस्कंधों में विभक्त है, जिनके पुनः क्रमशः 16 और 7 अध्ययन हैं। ग्रन्थ में जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्य मतों व वादों का प्ररूपण किया गया है, जैसे–क्रियावाद, अक्रियावाद, नियतिवाद, अज्ञानवाद, जगत्कर्त्तत्ववाद, आदि। द्वितीय श्रुतस्कंध में जीव–शरीर के एकत्व, ईश्वर–कर्त्तृत्व व नियतिवाद आदि मतों का खंडन किया गया है। आहार व भिक्षा के दोषों का निरूपण हुआ है। प्राचीन मतों, वादों व दृष्टियों की दृष्टि से यह श्रुतांग बहुत महत्वपूर्ण है। भाषा की दृष्टि से भी यह विशेष प्राचीन सिद्ध होता है।

स्थानांग (ठाणांग)

यह श्रुतांग दस अध्ययनों में विभाजित है, और उसमें सूत्रों की संख्या एक हजार से ऊपर है। इसकी रचना पूर्वोक्त दो श्रुतांगों से भिन्न प्रकार की है। यहां प्रत्येक अध्ययन में जैन सिद्धान्तानुसार वस्तु–संख्या गिनाई गई है– जैसे उत्तमपुरुष भी तीन प्रकार हैं– धर्मपुरुष, भोगपुरुष और कर्मपुरुष। अर्हन्त धर्मपुरुष हैं, चक्रवर्ती भोगपुरुष हैं और वासुदेव कर्मपुरुष।

समवायांग

इस श्रुतांग में 275 सूत्र हैं। स्थानांग के अनुसार यहां भी संख्या के क्रम से वस्तुओं का निर्देश और कहीं–कहीं उनके स्वरूप व भेदोपभेदों का वर्णन किया गया है। 211वें से 227वें सूत्र तक आयारांग आदि बारहों अंगों के विभाजन और विषय का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। यहां इन रचनाओं को द्वादशांग गणिपिटक कहा गया है। इसके पश्चात् जीवराशि का विवरण करते हुए इसमें स्वर्ग और नरक भूमियों का वर्णन पाया जाता है।

भगवती व्याख्याप्रज्ञप्ति (वियाह–पण्णन्ति)

इसे संक्षेप में केवल भगवती नाम से भी उल्लिखित किया जाता है। इस समस्त रचना का सूत्र–क्रम से भी विभाजन पाया जाता है, जिसके अनुसार कुल सूत्रों की संख्या 867 है। इस प्रकार यह अन्य श्रुतांगों की अपेक्षा बहुत विशाल है। इसकी वर्णन शैली प्रश्नोत्तर रूप में है। गौतम गणधर जिज्ञासा–भाव से प्रश्न करते हैं, और स्वयं तीर्थंकर महावीर उत्तर देते हैं।

ज्ञातृधर्मकथा (नायाधम्मकहाओ)

यह आगम दो श्रुतस्कंधों में विभाजित है। अध्ययनों में भिन्न–भिन्न कथानक तथा उनके द्वारा तप , त्याग व संयम संबंधी किसी नीति व न्याय की स्थापना की गई है।

उपासकाध्ययन (उपासगदसाओ)

इस श्रुतांग में जैसा नाम में ही सूचित किया गया है, दस अध्ययन हैं और उनमें क्रमशः आनन्द, कामदेव, चुलनीप्रिय, सुरादेव , चुल्लशतक, कुंछकोलिय, सद्दालपुत्र, महाशतक, नंदिनीप्रिय और सालिहीप्रिय इन दस उपासकों को अपने धर्म के परिपालन में कैसे–कैसे विघ्नों और प्रलोभनों का सामना करना पड़ता है, उनका विवरण दिया गया है।।

अन्तकृददशा (अंतगडदसाओ)

इस श्रुतांग में आठ वर्ग हैं, इनमें ऐसे महापुरुषों के कथानक उपस्थित किये गये हैं, जिन्होंने घोर तपस्या कर अन्त में निर्वाण प्राप्त किया और इसी के कारण वे अन्तकृत कहलाये।

अनुत्तरोपपादिकदशा (अणुत्तरोवाइय दसाओ)

इस श्रुतांग में कुछ ऐसे महापुरुषों का चरित्र वर्णित है, जिन्होंने अपनी धर्म–साधना के द्वारा मरणकर उन अनुत्तर स्वर्ग विमानों में जन्म लिया जहां से पुनः केवल एक बार ही मनुष्य योनि में आने से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्नव्याकरण (पण्ह–वागरण)

यह श्रुतांग दो खंडों में विभाजित है। प्रथम खंड में पांच आस्त्रव द्वारों का वर्णन है, और दूसरे में पांच संवर द्वारों का। पांच आस्रव द्वारों में हिंसादि–पांच पापों का विवेचन है और संवरद्वारों में उन्हीं के निषेध रूप अहिंसादि व्रतों का। इस प्रकार इसमें उक्त पांच व्रतों का सुव्यवस्थित वर्णन पाया जाता है।

विपाकसूत्र (विवागसुयं)

इस श्रुतांग में दो श्रुतस्कंध हैं, पहला दुःख विपाक विषयक और दूसरा सुख–विपाक विषयक। प्रथम श्रुत–स्कंध दूसरे की अपेक्षा बहुत बड़ा है। प्रत्येक में दस–दस अध्ययन हैं, जिनमें क्रमशः जीव के कर्मानुसार दुःख और सुख रूप कर्मफलों का वर्णन किया गया है। नाना व्याधियों के औषधि उपचार का विवरण भी मिलता है। हमें प्राचीन काल की नाना सामाजिक विधियों, मान्यताओं एवं अन्धविश्वासों का अच्छा परिचय इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है। इस प्रकार सामाजिक अध्ययन के लिये यह श्रुतांग महत्वपूर्ण है।

दृष्टिवाद (दिट्ठवाद)

यह श्रुतांग अब नहीं मिलता। समवायांग के अनुसार इसके पांच विभाग थे–परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका। प्रतीत होता है कि परिकर्म के अन्तर्गत लिपि–विज्ञान और गणित का विवरण था। दृष्टिवाद का पूर्वगत विभाग सबसे अधिक विशाल और

महत्वपूर्ण रहा है। अनुयोग नामक दृष्टिवाद के चतुर्थभेद के मूलप्रथमानुयोग और गंडिकानुयोग– ये दो भेद बतलाये गये हैं। प्रथम में अरहन्तों के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण संबंधी इतिवृत्त समाविष्ट किया गया था, और दूसरे में कुलकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि अन्य महापुरुषों के चरित्र का। इस प्रकार अनुयोग को प्राचीन जैन पुराण कहा जा सकता है।

आगमों का टीका साहित्य

आगम ग्रन्थों से सम्बद्ध अनेक उत्तरकालीन रचनाएं हैं, जिनका उद्देश्य आगमों के विषय को संक्षेप या विस्तार से समझाना है। ऐसी रचनाएं चार प्रकार की हैं, जो निर्युक्ति (णिज्जजुत्ति), भाष्य (भास), चूर्णि (चुण्णि) और टीका कहलाती हैं। ये रचनाएं भी आगम का अंग मानी जाती हैं, और उनके सहित यह साहित्य पंचांगी आगम कहलाता है इनमें निर्युक्तियां अपनी भाषा, शैली व विषय की दृष्टि से सर्वप्राचीन हैं। ये प्राकृत पद्यों में लिखी गई हैं और संक्षेप में विषय को प्रतिपादित करती हैं। इनमें प्रसंगानुसार विविध कथाओं व दृष्टान्तों के संकेत मिलते हैं, जिनका विस्तार हमें टीकाओं में प्राप्त होता है।

भाष्य भी प्राकृत गाथाओं में रचित संक्षिप्त प्रकरण हैं। ये अपनी शैली में निर्युक्तियों से इतने मिलते हैं कि बहुधा इन दोनों का परस्पर मिश्रण हो गया है, जिसका पृथक्करण असंभव–सा प्रतीत होता है। चूणियां भाषा व रचना शैली की दृष्टि से अपनी विशेषता रखती हैं। वे गद्य में लिखी गई हैं और भाषा यद्यपि प्राकृत–संस्कृत मिश्रित है, फिर भी इनमें प्राकृत की प्रधानता है। टीकाएं अपने नामानुसार ग्रन्थों को समझने–समझाने के लिये विशेष उपयोगी हैं। ये संस्कृत में विस्तार से लिखी गई हैं, किन्तु कहीं–कहीं और विशेषतः कथाओं में प्राकृत का आश्रय लिया गया है। प्रतीत होता है कि जो कथाएं प्राकृत में प्रचलित थीं, उन्हें यहां जैसे का तैसा उद्धृत कर दिया है।